REVIEW OF RESEARCH
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF) UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514 ISSN: 2249-894X
VOLUME - 8 | ISSUE - 2 | NOVEMBER - 2018

योग का मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव एवं सामाजिक उपादेयता

जितेन्द्र परमार
शोधार्थी

सारांश –

आज के इस अर्थ प्रधान युग में बहुत कम ऐसे सौभाग्यशाली मानव हैं जो शरीर से पूर्णरूपेण स्वस्थ हैं। कुछ तो वास्तव में स्वस्थ न होते हुए भी भूल से अपने को स्वस्थ समझ लेते हैं। वस्तुतः शरीर विज्ञान के आचार्यों ने स्वस्थ तथा निरोगी मनुष्य के जो लक्षण बताए हैं, उनके अनुसार तो शायद ही कोई व्यक्ति स्वस्थ एवं निरोगी पाया जायेगा।

स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन का निर्माण होता है उसी प्रकार स्वस्थ मन को धारण करने वाले व्यक्ति का शरीर भी स्वस्थ रहता है।

प्रस्तावना –

योग की परिभाषा –

योग शब्द 'युज समाधौ' आत्मनेपदी दिवादिगणीय धातु में 'घञ' प्रत्यय लगाने से निष्पन्न होता है। अतः योग शब्द का अर्थ समाधि अर्थात् चित्त की वृत्तियों का निरोध है। 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः' है। हमारा चित्त सत्वगुण, रजोगुण और तमोगुण के उपादान कारण वाला है, इसलिए उसका स्वभाव त्रिगुणात्मक है। अर्थात् चित्त, प्रकाश, क्रिया व स्थितिशील वाला है। चित्त की पाँच अवस्थायें हैं – क्षिप्त, विक्षिप्त, मूढ़, एकाग्र और निरुद्धावस्था। चित्त की एकाग्र अवस्था से योग का प्रारम्भ होता है। चित्त में जितनी भी वृत्तियाँ अर्थात् विचार उत्पन्न होते हैं उन सबको महर्षि पतंजलि ने पाँच भागों में विभक्त किया है। प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति। इन पाँचों प्रकार की क्लिष्ट और अक्लिष्ट वृत्तियों को रोक देना ही योग है। ''योगः समाधिः''। उपरोक्त पाँचों प्रकार की वृत्तियों का निरोध करने से क्लेश व कर्म के बन्धन शिथिल होते हैं और निरूद्ध अवस्था अभिमुख होती है। तथा सम्प्रज्ञात समाधि की प्राप्ति होती है। आत्मा अपने नित्य शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, आनन्दमय, शान्तिमय, पूर्ण सुखमय मूलस्वरूप या मूल स्वभाव में अवसिति हो जाता है। योग की या समाधि की इस अवस्था में योगी भगवान् का यन्त्र बनकर ईश्वरीय ज्ञान, शक्ति, सामर्थ्य, ईश्वरीय प्रेम करुणा–वात्सल्य या दिव्यता से युक्त होकर दिव्यकर्म करता है तथा दिव्य सुख या ईश्वरीय सुख का अखण्ड रूप से अनुभव करता हुआ दिव्य जीवन जीता है वह समष्टि में भी दिव्यता व शुभ का आधान करता है। **योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्ग त्यक्त्वा धनञ्जय। सिद्धसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।।** हे धनञ्जय! तू आसक्ति को त्यागकर तथा सिद्धि और असिद्धि में समान बुद्धिवाला होकर योग में स्थित हुआ कर्तव्यकर्मों को कर, समत्व ही योग कहलाता है। **बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सकृतदुष्कृते। तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम।** समबुद्धि युक्त पुरुष पुण्य और पाप दोनों की इसी लोक में त्याग देता है अर्थात् उनसे मुक्त हो जाता है। इससे तू समत्वरूप योग में लग जा, यह समत्वरूप योग ही कर्मों में कुशलता है अर्थात् कर्मबन्धन से छूटने का उपाय है। कठोपनिषद् की षष्ठीवल्ली के 10 व 11 वें मन्त्र में योग का वर्णन करते हुए ऋषि कहते है –

यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।
बुद्धिश्च न विचेष्टित तामाहुः परमां गतिम्।। (कठोप.6.10)

जब पांचों ज्ञानेन्द्रियाँ मन के साथ स्थिर हो जाती हैं, ठहर जाती हैं और बुद्धि भी कोई चेष्टा नहीं करती है अपितु निश्चल व निर्मल हो जाती है उस अवस्था को परम गति कहते हैं। और भी –

तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम्।
अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययौ।। (कठोप.6.11)

उपरोक्त पाँचों ज्ञानेन्द्रियों की स्थिर धारणा को योग कहते हैं। जिसकी इन्द्रियाँ स्थिर हो जाती है वह अप्रमत्त अर्थात् प्रमादहीन–सावधान हो जाता है । योग का अभिप्राय है – प्रभव तथा अप्यय। शुभ संस्कारों की या विवेक की उत्पत्ति प्रभव कहलाता है तथा अशुभ संस्कार व अविद्या का नाश अप्यय कहलाता है।

आसन –

योगाङ्गों में आसन का तृतीय स्थान है। आसन शब्द की व्युत्पत्ति 'आस् उपवेशने' धातु से उपवेशन अर्थ में ल्युट् प्रत्यय से हुई है, जिसका अर्थ है – ''आस्यते अनेनेत्यासनम्'' अर्थात् जिसके द्वारा बैठा जाए उसे आसन कहते हैं। यद्यपि बैठने की मुद्रा एवं बैठने के साधन कट आदि को भी आसन नाम से ही अभिहित कर दिया जाता है परन्तु महर्षि पतंजलि के अनुसार स्थिरता से सुखपूर्वक बैठना ही आसन है। नारायणतीर्थ ने इसे और स्पष्ट करते हुए कहा है – ''जो निश्चल और सुखकर होता है, वही आसन है।'' उनके अनुसार इसके द्वारा विशेष प्रकार से बैठा जाता है, इसलिए इसे आसन कहते हैं। बलदेव मिश्र के अनुसार – ''इसमें बैठा जाता है अथवा इसके द्वारा बैठा जाता है, इसलिए इसे आसन कहते हैं।'' स्वामी विवेकानन्द के अनुसार मेरुदण्ड के उपर जोर न देकर गर्दन और सिर को सीधा रखने की किसी विशेष अवस्था में रहना आसन है।

आसनों के भेद –

आसनों का यदि वैज्ञानिक ढंग से वर्गीकरण किया जाए तो तीन प्रकार से सभी आसनों को वर्गीकृत किया जा सकता है – संवर्धनात्मक आसन, शिथिलीकरणात्मक आसन और ध्यानात्मक आसन।

प्राणायाम –

आरोग्य प्राप्ति एवं स्वास्थ्य रक्षा में योगासनों को अभ्यास एक महत्वपूर्ण घटक हैं। यूं तो योग का सम्बन्ध मन के स्थैर्य एवं चित्तवृत्तियों के निरोध के माध्यम से स्व–स्वरूप में प्रतिष्ठित होने से है तथापि इस लक्ष्य की प्राप्ति में आसन–सिद्धि आवश्यक सोपान है। बिना आसन–सिद्धि के मन का स्थैर्य होना भी अत्यन्त कठिन है। स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन की अवस्थिति होती है और शारीरिक स्वास्थ्य तथा मानसिक स्वास्थ्य की प्राप्ति के लिये आसनों का अभ्यास भी अपेक्षित है। आसनों से जहाँ न केवल शरीर–सौष्ठव, स्फूर्ति आदि प्राप्त होती है वहीं श्वास–प्रश्वास की प्रक्रिया नियन्त्रित होती है, मन की स्थिरता प्राप्त होती है, सम्यक् ध्यान लगता है, शरीर में रक्त–संचार उचित रीति से होता है, शरीर की मांसपेशियों में प्रसार एवं संकुचन की प्रक्रिया तीव्र होती है, शरीर में विद्यमान त्रिदोषों (कफ, वात, पित्त) का संतुलन बना रहता है और रोगों के निवारण में सहायता मिलती है।

योग की सामाजिक उपादेयता –

सभी प्रकार के मनोरोगों की निवृत्ति के लिए योगदर्शन में जिन योगांगों का वर्णन–विवेचन उपलब्ध होता है। वे हैं – सन्तोष, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान, प्रत्याहार, धारणा तथा ध्यान। इन योगांगों का सम्यग् अनुपालन यदि मानव करता है तो उसका मन किसी भी विकट तथा प्रतिकूल परिस्थिति में व्याकुल या भ्रान्त नहीं हो सकता। ऐसा व्यक्ति ही पूर्णतः मानसिक रूप से स्वस्थ हो सकता है और यदि सभी मानव मानसिक स्वास्थ्य से युक्त हों तो समाज प्रगतिशील बना रहेगा।

निष्कर्ष –

आधुनिक जीवन के बढ़ते दुष्प्रभावों की वजह से प्रत्येक मानव व समाज अत्यधिक क्रियाशील हो गया है, इस क्रियाशीलता ने व्यक्ति और समाज को नकारात्मकता की ओर ले जाना आरंभ कर दिया है जिसकी वजह से व्यक्ति अपने सामाजिक दायित्वों का निर्वहन न करते हुए वरन् अपने व्यक्तिगत दायित्वों को पूर्ण करने में लीन रहता है जिसके कारण परिवर्तित सामाजिक परिस्थितियों में वह संतुलन व सामंजस्य स्थापित नहीं कर पाता है।

अत्यधिक गतिशीलता के कारण मानव व समाज में सुविधाओं का विस्तार तो हुआ है किन्तु वही इस गतिशीलता ने उसके शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को पूरी तरह से प्रभावित किया है। समाज में बने रहने के लिए और उन्नति के लिए ये गतिशीलता और क्रियाशीलता आवश्यक है। किन्तु इनके साथ–साथ व्यक्ति का शारीरिक, मानसिक और सामाजिक रूप से स्वस्थ रहना भी आवश्यक है जो कि मानव जीवन में योग को अपनाये बिना संभव नहीं है। योग आसन और प्राणायाम का ही नाम नहीं है वरन् योग एक संपूर्ण जीवन पद्धति है। योग को अपनाकर व्यक्ति निश्चित ही अपने व्यक्तिगत जीवन के साथ–साथ सामाजिक जीवन में उत्कर्ष की प्राप्ति कर सकेगा।

संदर्भ सूची –

1) योगदर्शन – महर्षि पतंजलि, हरिकृष्णदास, गोयन्दका, गीता प्रेस गोरखपुर, संस्करण वि. सं. 2065
2) योगसूत्र – महर्षि पतंजलि भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण 1971
3) वायु पुराण – हेमराज श्रीकृष्णदास नाग पब्लिशर्स, दिल्ली संस्करण 1983
4) विष्णु पुराण – थानेशचन्द्र उप्रैती परिमल पब्लिशर्स, दिल्ली संस्करण 1987
5) अष्टांग संग्रह – वैद्य श्री गोवर्द्धन शर्मा, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, संस्करण वि. सं. 2035
6) यजुर्वेद – नाग प्रकाशन दिल्ली, तृतीय संस्करण 2001
7) योगदर्शनम् – महर्षि पतंजलि, डॉ0 रमाशंकर त्रिपाठी, कृष्णदास अकादमी प्रकाशक वाराणसी संस्करण 1999

LBP PUBLICATION